जवाहरलाल नेहरू : व्यावहारिक राजनीतिक दार्शनिक

***डॉ0 नीलिमा सिंह**

सारांश

पंडित जवाहर लाल नेहरू स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे और लगातार सत्रह वर्षों तक वे भारत के प्रधानमंत्री रहे। उनका जितना योगदान स्वतंत्र भारत के निर्माण में है उतना ही स्वतंत्रता आन्दोलन में भी है। उन्होंने प्रारम्भिक जीवन से लेकर मृत्यु तक कांग्रेस कार्यकर्ता, कांग्रेस अध्यक्ष, स्वतंत्रता सेनानी, भारत के प्रधानमंत्री व विदेश मंत्री के रूप में अनेक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है और प्रत्येक स्तर पर उन्होंने राजनीतिक दृष्टि से जो भी किया और कहा उसमें सिद्धान्त से अधिक व्यवहारिकता निहित थी। प्रस्तुत शोध पत्र में पंडित जवाहर लाल नेहरू का व्यावहारिक राजनीतिक दार्शनिक के रूप में विश्लेषण किया गया है। शोध पत्र सूचनात्मक है और विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्म्क पद्धति का प्रयोग किया गया है। शोध पत्र का उद्देश्य यह अवगत कराना है कि पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपने जीवन काल में जो भी निर्णय लिये या विचार प्रतिपादित किये वे व्यवहारिक राजनीति को दृष्टिगत रखकर लिये गये।

महत्वपूर्ण शब्द – राजनीतिक दार्शनिक, विदेश नीति, प्रधानमंत्री, स्वतंत्रता आन्दोलन

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू एक सम्भ्रान्त परिवार की एकमात्र संतान थे। उनका जन्म 14 नवम्बर, 1889 को इलाहाबाद में एक कश्मीरी परिवार में हुआ था। इनके पिता पं0 मोतीलाल नेहरू भारत के प्रसिद्ध वकील तथा माता स्वरूप रानी एक सुसंस्कृत गृहिणी थीं। उनका पालन–पोषण बड़े ही लाड़–प्यार से हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही योग्य शिक्षकों द्वारा दी गयी। सन् 1904 में, 15 वर्ष की आयु में वे अध्ययन हेतु इंग्लैण्ड गये। इंग्लैण्ड में उन्होंने प्रसिद्ध 'हैरो स्कूल', 'ट्रिनिटी कॉलेज' तथा 'इनर टेम्पल' से क्रमशः ऐण्ट्रेस, बी.एससी. (आनर्स) तथा 'बार–एट–ला' की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् वे सन् 1912 में भारत लौटे।

भारत वापसी के बाद उन्होंने वकालत प्रारम्भ की परन्तु उनकी रुचि भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में गतिशील कांग्रेस–आन्दोलन में अधिक थी और वे पहली बार 1912 में पटना के बाकीपुर अधिवेशन में सम्मिलित हुए। 1914 में 6 वर्ष के कारावास के पश्चात् जब लोकमान्य तिलक लखनऊ पहुँचे तो जवाहरलाल ने वहाँ आकर उनके दर्शन किये तथा तिलक के स्वागत में उठते जन सैलाब को देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। तत्पश्चात् पं0 नेहरू ने लोकमान्य तथा ऐनी बेसेन्ट के नेतृत्व में गठित होम रूल लीग की सदस्यता ग्रहण कर ली। 1916 में कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन वह ऐतिहासिक क्षण था जिसमें नरम एवं गरम दल का विलय हुआ और इस सम्मेलन में भाग लेने नेहरू जी भी पहुँचे, जहाँ उनका महात्मा गाँधी से प्रथम सम्पर्क हुआ, आगे चलकर वे गाँधी जी के प्रिय शिष्य बने और अनेक अवसरों पर दोनों में मत–विभिन्नता होते हुए भी गाँधी जी को नेहरू में पूर्ण आस्था थी, 1916 में ही 27 वर्षीय पं0 नेहरू का विवाह 16 वर्षीय कमला कौल से हुआ और उनको इन्दिरा प्रियदर्शिनी नामक पुत्री रत्न की प्राप्ति हुई। गाँधी जी के सानिध्य में आकर नेहरू जी ने पाश्चात्य जीवन शैली का त्याग किया और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनमानस को जाग्रत करने हेतु वृहद यात्रा की। नेहरू जी 1918 में होमरूल लीग के सचिव बने और 1920 से वे भारत के किसानों की समस्याओं तथा आकांक्षाओं में गहरी रुचि लेने लगे। 1921 से उनकी कारावास यात्रा प्रारम्भ हुयी जब विदेशी कपड़े की दुकान पर प्रदर्शन करते हुए उन्हें गिरफ्तार किया गया और उन्हें $1^{1}/_{2}$ वर्ष की कारावास की सजा सुनाई गई। यद्यपि 9 माह बाद उन्हें छोड़ दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति तक नेहरू जी कुल मिलाकर लगभग 9 वर्ष देश सेवा एवं स्वतंत्रता के लिए कारावास में रहे। 1922 में नेहरू जी इलाहाबाद नगरपालिका के अध्यक्ष तथा 1923 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के महासचिव बने। 1929 में लाहौर अधिवेशन में वे कांग्रेस दल के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और उन्होंने पूर्ण स्वराज्य की ऐतिहासिक माँग की। महात्मा गाँधी द्वारा 1930 में प्रारम्भ सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया गया और नेहरू जी ने नमक सत्याग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और गिरफ्तार हुए। 1936 में कांग्रेस अधिवेशन

*एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान,राजर्षि टण्डन महिला महाविद्यालय, (संघटक इलाहाबाद विश्वविद्यालय), इलाहाबाद

तथा अगले वर्ष फेजपुर अधिवेशन में वे पुनः अध्यक्ष चुने गये। 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में वे जनमानस के साथ अग्रिम पंक्ति में खड़े थे और 1945 में वे 'शिमला सम्मेलन' में भाग लेने गये। 1946 में वे भारत की अन्तरिम सरकार के प्रमुख बने और 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने। भारत की आजादी की बेला में, अर्द्धरात्रि को नेहरू जी का राष्ट्र को सम्बोधन हृदय स्पर्शी था। उन्होंने कहा – ''आधी रात के घन्टे के साथ, जबकि संसार सो रहा है भारत जीवन और स्वाधीनता की ओर जागेगा। एक क्षण आता है, जो इतिहास में भी भी आता है, जब हम पुराने से नये की ओर बढ़ते हैं, जब एक युग समाप्त होता है और जब बहुत दिनों तक दबाई हुई आत्मा बोल उठती है। यह उचित ही है कि इस पवित्र अवसर पर भारत की और उसके निवासियों की और उससे भी बड़ी मानवता की सेवा का संकल्प लें।'' नेहरू रुके और फिर बोले 'भारत की सेवा के अर्थ होते हैं, उन लाखों लोगों की सेवा जो कि कष्ट सह रहे हैं, इसके अर्थ हैं गरीबी और अज्ञान और रोग और अवसर की असमानता को समाप्त करना।'[1]

पं0 नेहरू 15 अगस्त, 1947 से लेकर 27 मई, 1964 तक भारत के प्रधानमंत्री रहे। अपने 17 वर्षीय प्रधानमंत्री के कार्यकाल में उन्होंने भारत की आर्थिक नीति, विदेश नीति पर विशेष प्रभाव छोड़ा। उन्होंने शिक्षा और समाज में सुधार के अनेक कार्य किये। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, भारतीय प्रबंधन संस्थान तथा राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान नेहरू जी की ही देन हैं। उन्होंने महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु विवाह की आयु 12 से बढ़ाकर 15 वर्ष, महिलाओं को तलाक व सम्पत्ति का अधिकार तथा दहेज विरोधी व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया।

पं0 नेहरू एक राजनीतिज्ञ व समाजसेवी होने के साथ–साथ साहित्य प्रेमी भी थे। उन्होंने अपनी लेखनी से विविध विचारों का प्रतिपादन एवं विश्लेषण किया। यद्यपि हम नेहरू जी को प्लेटो, अरस्तू, हाब्स, लॉक रूसो, मिल व मार्क्स जैसा राजननीतिक दार्शनिक तो नहीं मान सकते परन्तु उन्होंने समय–समय पर जो विचार व समीक्षा व्यक्त की है वे उनके राजनीतिक दर्शन के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। राजनीतिक दर्शन की दृष्टि से उनकी आत्मकथा (1936) के अतिरिक्त अन्य कृतियाँ विश्व इतिहास की झलक (1939), भारत की खोज (1946) तथा उनके असंख्य लेखों, पत्रों एवं भाषणों के संग्रह हैं।

नेहरू एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ थे और उनकी लोकतंत्र में भी बहुत आस्था थी। स्वतंत्रता प्राप्ति की आधी रात को उनका राष्ट्र को सम्बोधन उनकी जन–जन में आस्था को प्रतिध्वनित करता है। उन्होंने कहा 'वर्षों पहले हमने भाग्य के साथ प्रतिज्ञा की थी और अब वक्त आ रहा है जब हम अपना वायदा पूरा करेंगे' इन वायदों को दोहराते हुए उन्होंने कहा कि 'भारत की सेवा के अर्थ होते हैं उन लाखों लोगों की सेवा जो कष्ट सह रहे हैं। इसका अर्थ है गरीबी और अज्ञान तथा रोजगार के अवसर की असमानता को समाप्त करना।' डॉ0 शंकर दयाल शर्मा के अनुसार 'लोकतंत्र पं0 नेहरू के विचारों में रच–बस सा गया था। उन्हें सुनते समय, उन्हें पढ़ते समय तथा उनसे बातचीत करते समय हमेशा इस बात का एहसास होता था कि मानों वे पूरे हिन्दुस्तान के हैं और पूरा हिन्दुस्तान उनका है। एक तरह से संसदीय प्रणाली उनकी दिनचर्या का ही हिस्सा बन गई थी। उन्होंने लोकतंत्र को केवल चिंतन के ही आधार पर स्वीकार नहीं किया था, बल्कि उसे आत्मसात कर लिया था और इस बात की अपेक्षा वे हिन्दुस्तान के हर आदमी से करते थे, उनके सामने आने पर ऐसा लगता था मानो कि उनकी आँखों में आकाश की विराटता तथा व्यक्तित्व में स्वच्छंद विचरण करने वाले पक्षियों की चहचहाहट भरी हुई हो।'[2]

नेहरू जी की इतिहास में विशेष रुचि थी और यही कारण है कि वे अपने देश को गहराई से समझ सके तथा उन्होंने पश्चिम के उदारवादी चिंतन तथा सोवियत संघ के साम्यवादी विचारों को सम्मिश्रित कर भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल ढाला और स्वीकार किया कि लोकतांत्रिक प्रणाली हमारी विरासत की एक अमूल्य निधि रही है। नेहरू ने लोकतंत्र को केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा वरन् सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में भी उन्होंने लोकतंत्र का समर्थन किया। उनका कहना था कि नागरिकों को केवल राजनीतिक स्वतंत्रतता देना ही पर्याप्त नहीं है, उन्हें अवसरों की समानता दी जानी चाहिए, आर्थिक विषमताओं का अन्त किया जाना चाहिए। सामाजिक रूढ़ियों और घोर आर्थिक असमानताओं से पूर्ण समाज कभी लोकतांत्रिक नहीं हो सकता। भूखे व्यक्ति के लिए कोरा मताधिकार कोई महत्व नहीं रखता। यदि समाज में ऊँच–नीच,

छूत–अछूत के भेदभाव हों, दरिद्रों की कतार हो, धन का न्यायपूर्ण वितरण न हो, वर्ग भेद का प्रसार हो और मुट्ठी भर शिक्षित लोग निरक्षर जन साधारण को अपने पैरों तले दबाए हों तो ऐसे देश या समाज में लोकतंत्र की बात करना निरर्थक है।[3]

पं0 जवाहरलाल नेहरू की मान्यता थी कि भारत जैसे विविध संस्कृति वाले देश में एक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जहाँ हर संस्कृति को अपने नैसर्गिक रूप में फलने–फूलने का मौका मिले, जहाँ किसी भी समस्या के बारे में खुली बातचीत की जा सके और उसका शांतिपूर्ण समाधान ढूँढ़ा जा सके। उन्होंने सारे मापदंड़ों पर सभी प्रचलित शासन–व्यवस्थाओं को तौला तो संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को इसके सर्वाधिक अनुकूल पाया। वे मानते थे कि संसदीय शासन प्रणाली में अन्य प्रणालियों की तुलना में 'इच्छा तथा इच्छा पूर्ति के बीच की खाई' को पाटने की अधिक संभावना है तथा इसमें ऐसा गुण है कि वह जीवन के परिवर्तनशील ढ़ाँचे में ठीक बैठ सकता है।[4] पं0 नेहरू के लिए लोकतांत्रिक व्यवस्था अपने आप में कोई साध्य नहीं था, बल्कि वे इसे एक साधन मानते थे। नई दिल्ली में 25 फरवरी, 1956 को प्रथम 'अखिल भारतीय संसदीय लोकतंत्र' संगोष्ठी में बोलते हुए पं0 नेहरू ने इस बारे में स्पष्ट रूप से कहा था कि ''लोकतंत्र मंजिल तक पहुँचने का एक जरिया है। हमारी मंजिल क्या है? .....मंजिल है व्यक्ति के लिए बेहतर जिंदगी।''[5] पं0 नेहरू ने केवल विचारों के स्तर पर ही संसदीय व्यवस्था का सम्मान नहीं किया, बल्कि उसे अपनी साँसों में जिया भी है। संसदीय संस्थाओं के प्रति उनके मन में गहरे सम्मान का भाव था। सदन में शिष्टाचार की वे जीवंत प्रतिमूर्ति थे। यहाँ तक कि वाद–विवाद के दौरान उत्तेजनापूर्ण क्षणों में भी वह अपना संतुलन बनाए रखते थे। उनमें जो आत्म संयम की साधना थी, उसी ने उन्हें इतना संतुलित बना दिया था। एक बार उन्होंने कहा था कि ''प्रजातंत्र में अनुशासन स्वयं द्वारा लागू होता है। यदि अनुशासन नहीं है तो प्रजातंत्र भी नहीं है।[6]

नेहरू जी की लोकतंत्र में गहन आस्था का ज्वलंत प्रमाण यह है कि स्वतंत्र भारत में नेहरू जी की सरकार सदैव बहुमत में रही, फिर भी उन्होंने कभी भी अल्पमत की अवहेलना नहीं की। अल्पमत के सम्मान को वे लोकतांत्रिक व्यवस्था का सम्मान मानते थे। संसदीय लोकतंत्र विषय पर नई दिल्ली में आयोजित एक गोष्ठी में 5 सितम्बर, 1957 को उन्होंने कहा था ''हमने संसदीय सरकार को स्वीकार किया है, क्योंकि समस्याओं के निदान के लिए यह एक शांतिपूर्ण तरीका है। यह तरीका है दलीलें पेश करने का, आपस में बैठकर चर्चा करने का और फैसले करने का तथा उस फैसले को स्वीकार करने का, भले ही कोई उससे इत्तफाक न रखता हो। फिर भी शासन की संसदीय प्रणाली में अल्पमत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। स्वाभाविक रूप से बहुमत, बहुमत होता है तो चलेगी उसकी ही, लेकिन वह बहुमत, जो अल्पमत को नजरअंदाज करता है, संसदीय लोकतंत्र की सच्ची आत्मा के मुताबिक काम नहीं करता।[7]

लोकतंत्र और समाजवाद दोनों एक–दूसरे से भिन्न होते हैं परन्तु नेहरू जी सच्चा लोकतंत्र आर्थिक विषमताओं का अभाव मानते थे। वे लोकतंत्र और समाजवाद का समन्वय करना चाहते थे अतः उन्होंने अपना लक्ष्य भारत में लोकतंत्रीय समाजवाद का रखा। नेहरू जी ने 29–31 दिसम्बर, 1929 को लाहौर अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में कहा था – ''मुझे साफ तौर पर स्वीकार करना ही होगा कि मैं समाजवादी और गणतंत्रवादी हूँ। मैं राजाओं, रजवाड़ों अथवा उस व्यवस्था का समर्थन नहीं करता जो उद्योग के आधुनिक राजाओं को जन्म देती है। लोगों के जीवन एवं भाग्य पर तो उनका अधिकार पुराने राजाओं से भी कहीं बढ़–चढ़कर है। .....हमें अनुभव करना ही होगा कि धीरे–धीरे समाजवाद का फलसफा समूचे संसार में समाज के समूचे ढ़ाँचे में समा गया है। विवाद केवल इस बारे में है कि किस गति और किस तरीके से उसे पूर्णतः साकार करने की दिशा में बढ़ा जाए। भारत को वही रास्ता अपनाना होगा यदि वह अपनी गरीबी तथा असमता को मिटाना चाहता है, भले ही वह अपने निजी तरीके ईजाद करे और अपनी जाति की प्रकृति के अनुरूप आदर्श को अपनाए।[8] 12–14 अप्रैल, 1936 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में, पुनः कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में, नेहरु ने इससे भी बड़ी बात कही थी – ''मुझे विश्वास हो चुका है कि विश्व की समस्याओं तथा भारत की समस्याओं का एकमात्र हल समाजवाद के पास है। जब मैं इस शब्द का इस्तेमाल करता हूँ तो मैं वैसा ढुलभुल मानवतावादी दृष्टि से नहीं करता बल्कि वैज्ञानिक, आर्थिक दृष्टि से करता हूँ, लेकिन समाजवाद कोटा आर्थिक सिद्धान्त नहीं है। वह जीवन दर्शन है और इस कारण भी वह मुझे भाता है। भारतीयों की गरीबी, भारी बेरोजगारी और गुलामी को मिटाने का कोई रास्ता मुझे

नहीं सूझता। एक रास्ता है और वह है समाजवाद का। उसका तकाजा है कि हमारे राजनीतिक तथा सामाजिक ढ़ाँचे में भारी तथा क्रांतिकारी परिवर्तन किए जाएँ, कृषि तथा उद्योग में निहित स्वार्थों का खात्मा किया जाए। उसकी माँग है कि सामंतवादी तथा निरंकुश देशी रजवाड़ों का भी सफाया किया जाए.....। संक्षेप में, इसका अर्थ है एक नई सभ्यता। .....अतः समाजवाद मेरी दृष्टि में केवल आर्थिक सिद्धान्त नहीं है..... यह गहन श्रद्धा का विशय है जिसे मैं सच्चे दिल व दिमाग से चाहता हूँ।''[9]

प्रारम्भ में नेहरु जी मार्क्सवादी साम्यवाद के प्रति इसलिए आकर्षित हुए क्योंकि इसमें उन्हें ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध का एक तर्कसंगत आधार मिल गया था परन्तु आगे चलकर उन्हें इसकी अनेक मान्यताएं अपनी विचारधारा के विरुद्ध प्रतीत हुईं। नेहरुजी प्रबल राष्ट्रवादी थे जबकि मार्क्सवाद राष्ट्रवाद के विरुद्ध था इसी आधार पर उन्होंने एशिया के साम्यवादी आन्दोलन की कड़ी आलोचना की। भारतीय सन्दर्भ में उन्हें वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त भी स्वीकार्य नहीं लगा। इसका खण्डन करते हुए उन्होंने महात्मा गाँधी के इस विचार की पैरवी की कि वर्गभेद का शांतिपूर्ण समाधान संभव है।[10] अतः नेहरु ने समाजवाद का समर्थन किया परन्तु साथ ही उन्होंने अहिंसा तथा मानव–अधिकारों के महत्व का पक्ष लिया। 3 अप्रैल, 1939 को नेताजी सुभाष चन्द्र बोस को लिखे एक पत्र में नेहरु ने कहा – 'स्वभाव और शिक्षा से मैं व्यक्तिवादी हूँ पर बौद्धिक रूप से मैं समाजवादी हूँ। मुझे आशा है कि समाजवाद व्यक्तिवाद का दमन या हनन नहीं करता। वस्तुतः मेरा इससे लगाव है क्योंकि यह अनेक व्यक्तियों को आर्थिक तथा सांस्कृतिक दासता से मुक्त कराएगा।''[11]

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में नेहरु जी के विचार स्पष्ट एवं प्रभावी थे। उनके द्वारा प्रतिपादित पंचशील का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के क्षेत्र में उनकी न केवल भारतीय राजनीति में ही, वरन् विश्व की राजनीति में सबसे महत्वपूर्ण एवं मौलिक देन है। उनका पंचशील का सिद्धान्त आदर्शात्मक न होकर व्यावहारिक था। सन् 1954 ई0 में उन्होंने साम्यवाद चीन के प्रधानमंत्री चाऊ–एन–लाई के साथ एक संयुक्त वक्तव्य में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए घोषणा की थी कि राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों के निर्माण तथा निर्धारण में निम्नांकित पाँच बातों पर ध्यान देना चाहिए –[12]

1. एक–दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता तथा सर्वोच्च सत्ता के लिए पारस्परिक सम्मान की भावना,
2. अनाक्रमण,
3. एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना,
4. समानता एवं पारस्परिक लाभ, तथा
5. शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व।

प्रथम तीन सिद्धान्तों का सार यह है कि कोई भी शक्तिशाली राज्य अपने से निर्बल राष्ट्र पर राजनैतिक एवं सैनिक शर्तें नहीं थोपेगा, जिसका दूसरा अर्थ यह भी है कि प्रत्येक देश को प्रादेशिक एवं आर्थिक साम्राज्यवाद के सिद्धान्तों का परित्याग करना चाहिए, अर्थात् कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे किसी दूसरे राष्ट्र की सर्वोच्चता, अखण्डता तथा अहस्तक्षेप के सिद्धान्तों का उल्लंघन हो। अहस्तक्षेप के द्वारा युद्ध की सम्भावनाओं को निश्चित रूप से कम और शान्ति को संभावनाओं को निश्चित रूप से अधिक बढ़ाया जा सकता है। चौथा और पाँचवा सिद्धान्त क्रमशः समानता और पारस्परिक लाभ एवं शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का है जो आज के आणविक युग में अति महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी से तनाव कम करने और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करने में सहायता मिलेगी। नेहरु जी विश्व शांति के समर्थक थे और उनका अगाध विश्वास था कि शनैः–शनैः मानवता अथवा मानव सभ्यता का स्तर उत्तरोत्तर ऊँचा होता चला जाएगा और अंततः वह विकास की उस पूर्णतम अवस्था को प्राप्त कर लेगी जहाँ अस्तित्व की आदर्श स्थिति आ जाएगी। 24 जनवरी, 1948 को उन्होंने कहा था – 'हम एक विश्व की बात करते हैं और करोड़ों लोग इसके लिए तड़प रहे हैं। मानव जाति की इस आदर्श स्थिति को प्राप्त करने के लिए सच्चे प्रयासों की जरूरत है..... (उसे) आना ही चाहिए और वह आएगी।'' भारतीय स्वाधीनता के अरुणोदय काल में संविधान सभा में बोलते हुए 14 अगस्त, 1947 को उन्होंने कहा था – ''.....हमें कठोर परिश्रम करना है..... तभी हम अपने सपनों को साकार कर सकेंगे। .....वे सपने पूरे विश्व के लिए हैं, सभी राष्ट्रों तथा देशों के लिए। कहा जाता

है कि शांति अविभाज्य है, वही स्थिति अब इस एक विश्व में स्वाधीनता और समृद्धि की है.....।'' फिर नेहरु ने ऐतिहासिक संविधान सभा के सभी सदस्यों को शपथ दिलाई कि वे विश्व शांति के संवर्धन और मानव कल्याण में सहयोग देंगे। श्री नेहरु द्वारा व्यक्त संकल्पना विश्व के लिए मानवीय चिंतन की विरासत का ही हिस्सा है। ऋग्वेद में ऐसे अंतराष्ट्रीय दृष्टिकोण का प्रतिपादन इस प्रकार किया गया है – 'एकैव मानुषी जाति।'' (मानव प्राणियों की केवल एक ही जाति है)।[13]

पं0 नेहरु न केवल 17 वर्षों तक भारत के प्रधानमंत्री रहे वरन् वे 17 वर्षों तक विदेश मंत्री भी रहे। उससे पूर्व लगभग 25 वर्षों से अखिल भारतीय कांग्रेस के विदेशी मामलों के प्रमुख प्रवक्ता भी रहे अतएव उनके व्यक्तित्व की छाप भारत की विदेश नीति के हर पहलू पर झलकती है। वे साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और फासिस्टवाद के विरोधी थे। वे सभी अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शांतिपूर्ण उपायों से सुलझाने के प्रबल समर्थक थे। पंचशील व गुटनिरपेक्षता उनकी विदेश नीति के प्रमुख अस्त्र थे। गुटनिरेपक्षता से अभिप्राय यह है कि भारत विश्व राजनीति के दो गुटों (रूस तथा अमरीका) में से किसी एक में भी सम्मिलित न होकर उनसे पृथक् रहते हुए भी उनसे मैत्री सम्बन्ध कायम रखे तथा उनकी सहायता से अपनी उन्नति करे। नेहरू का मानना था कि भारत अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा में अपना योग तभी दे सकता है जबकि वह अपने विवेक की स्वतंत्रता भी न खो बैठे और यदि वह किसी गुट विशेष के साथ अपने सम्बन्ध स्थापित कर लेगा तो वो ऐसा नहीं कर सकता। उनका यह मानना था कि गुट–निरपेक्षता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम संसार की राजनीति से अपने को पृथक् रखें और न ही इसका अर्थ किसी शांतिवाद से है। प्रत्येक देश को युद्ध की संभावनाओं को ध्यान में रखकर काम करना पड़ेगा। यदि कोई देश हम पर आक्रमण करेगा तो हम उसका घोर प्रतिरोध करेंगे परन्तु इसके साथ ही हमारा यह विश्वास रहा है कि भारत पर कोई भी राज्य शायद आक्रमण नहीं करेगा। संक्षेप में गुटनिरपेक्षता की नीति उन शक्तियों की सहायता करती है जिससे हमारा मतैक्य है और उन शक्तियों को अपने से दूर रखती है जिनकी नीतियों से शांति और सुरक्षा के खतरे में पड़ने की संभावना है। संयुक्त राज्य अमेरिका में भाषण करते हुए नेहरू ने कहा था ''जहाँ स्वतंत्रता के लिए खतरा उपस्थित हो, न्याय को धमकी दी जाती हो, अथवा जहाँ आक्रमण होता हो, वहाँ न तो हम तटस्थ रह सकते हैं और न तटस्थ रहेंगे।''

अहिंसा के समर्थक होते हुए भी नेहरुजी का मानना था कि राज्य हिंसा पर आश्रित होते हैं, यह बात जग जाहिर है। केवल शस्त्रों की हिंसा पर ही नहीं, वरन् अत्यन्त सूक्ष्म तथा भयानक हिंसा पर – अर्थात् जासूसों, मुखबिरों, लोगों को भड़काने वाले एजेण्टों, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा और समाचार पत्रों आदि द्वारा झूठा प्रचार, धार्मिक और अर्थाभाव तथा भुखमरी वगैरा के दूसरे प्रकार के भयों पर, शान्ति काल तक में सरकारों के बीच सब प्रकार का झूठ और दगा–फरेब जायज है, बशर्ते कि वह खुल न जाय और युद्ध के समय तो वह और भी ज्यादा जायज हो जाता है।[14]

अगर बाहरी आक्रमणों से अपनी रक्षा तथा आंतरिक व्यवस्था के लिए बल और दमन आवश्यक है, तो दोनों के बीच क्या मर्यादा स्थापित की जाय? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा इस अपूर्ण संसार में किसी भी राष्ट्रीय सरकार को अपने ऊपर आक्रमण से रक्षा करने के लिए बल प्रयोग करना पड़ेगा। अवश्य ही राज्य को अपने पड़ोसी और अन्य दूसरे राज्यों के साथ सर्वथा शान्तिमय और मित्रतापूर्ण नीति बरतनी चाहिए, लेकिन फिर भी आक्रमण की सम्भावना से इन्कार करना बेहूदगी होगी। राज्य को कुछ दबाने वाले कानून भी बनाने पड़ेंगे।[15]

हमारा अन्तिम ध्येय तो यही हो सकता है कि एक वर्गहीन समाज स्थापित हो, जिसमें सबको समान न्याय और समान सुविधा प्राप्त हो; जिसमें मनुष्य जाति को भौतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से ऊँचा उठाने और उसमें सहयोग, निःस्वार्थ सेवाभाव, सत्यनिष्ठा, सद्भाव और प्रेम के आध्यात्मिक गुणों की वृद्धि करने और अन्त में एक संसार व्यापी समाज की स्थापना करने की सुनिश्चित योजना हो। जो कोई इस लक्ष्य के रास्ते में रोड़ा बनकर आये उसे हटाना होगा – हो सके तो नम्रता से, अन्यथा बलपूर्वक और इस बात में बहुत कम शक है कि अकसर बल प्रयोग की जरूरत पड़ेगी। लेकिन अगर उसका प्रयोग करना ही पड़े तो वह घृणा और क्रूरता की भावना से नहीं, बल्कि एक रुकावट को दूर करने की शुद्ध इच्छा से।[16]

इस प्रकार जवाहरलाल नेहरु एक कुशल राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने राजनीतिक विचारों का प्रतिपादन व्यावहारिकता की कसौटी पर किया। उन्होंने आदर्श एवं यथार्थ का भारतीय परिदृश्य में सुन्दर सम्मिश्रण किया और इसी का उदाहरण

है कि लोकतंत्र के साथ उन्होंने समाजवाद का समर्थन किया, अहिंसा एवं विश्वशान्ति के समर्थक होते हुए भी आवश्यकता पड़ने पर हिंसा एवं युद्ध से परहेज न करने की बात स्वीकार की। गाँधी जी के प्रिय शिष्य होते हुए भी उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर गाँधी जी के विचारों से भी असहमति व्यक्त की। उनके व्यावहारिक राजनीतिक दृष्टिकोण का परिणाम है कि भारत की विदेश नीति पर इतने वर्षो के बाद भी उनका अमिट प्रभाव दिखायी देता है। पंचशील व गुट निर्पेक्षता के सिद्धान्तों के महत्व को विश्व ने स्वीकारा है और भारत में सभी दल के लोग दलीय मतभेद को भुलाते हुए उनके विचारों के सम्मुख श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं।

सन्दर्भ

1. अवस्थी, ए0 एवं अवस्थी, आर0के0 . आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेषन, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर, 2005, ISBN 81.85789.0.0.,पृष्ठ 326
2. शर्मा, शंकर दयाल, हमारे पथ प्रदर्शक, किताब घर, नई दिल्ली, THIRD EDITION 1996, ISBN 81.7016...206. 8, पृष्ठ 45
3. अवस्थी, ए. एवं अवस्थी, आर.के.. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर, 2005, ISBN 81.85789.0.0.....पृष्ठ 332
4. शर्मा, शंकर दयाल, हमारे पथ प्रदर्शक, किताब घर, नई दिल्ली, THIRD EDITION 1996, ISBN 81.7016...206. 8, पृष्ठ 46..47
5. वही, पृष्ठ 47
6. वही, पृष्ठ 47
7. वही, पृष्ठ 48
8. अवस्थी, आनन्द प्रकाश, भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2005, ISBN 81.85778.09. 4,पृष्ठ 297. 298
9. शर्मा, शंकर दयाल – हमारे प्रेरणा पुंज, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 1994, ISBN 81.7315.086.9, पृष्ठ 61
10. गाबा, ओम प्रकाश – भारतीय राजनीति–विचारक, मयूर पेपर बैक्स ए–95, सेक्टर–5, नोएडा, 2008, ISBN 81. 7198002.3,पृष्ठ 205
11. शर्मा, शंकर दयाल – हमारे प्रेरणा पुंज, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 1994, ISBN 81.7315.086.9, पृष्ठ 61–62
12. गाबा, ओम प्रकाश – – भारतीय राजनीति–विचारक, मयूर पेपर बैक्स ए–95, सेक्टर–5 एनोएडा, 2008, ISBN 81. 7198002.3, पृष्ठ 212
13. शर्मा, शंकर दयाल – हमारे प्रेरणा पुंज, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 1994, ISBN 81.7315.086.9, पृष्ठ 56
14. नेहरु, जवाहरलाल – मेरी कहानी, हिन्दी संपादक – हरिभाऊ उपाध्याय सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 635
15. वही, पृष्ठ 637
16. वही, पृष्ठ 639